**International Journal of Advanced Research and Development**
**ISSN: 2455-4030**
**Impact Factor: RJIF 5.24**
**www.advancedjournal.com**
**Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 969-971**

# जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों में व्यक्तिवादी मनोभावों का चित्रण

**राजेंद्र शर्मा**
गांव व डा0 जुड्डी कोसली, हरियाणा, भारत।

**प्रस्तावना**

आधुनिक हिन्दी उपन्यास के विकास में मनोविश्लेषण का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोविश्लेषण वैसे चिकित्सा जगत का शब्द है। आज मनोचिकित्सा को विशद् महत्व मिला हुआ है। सृजनात्मक स्तर पर – विशेष कर उपन्यास साहित्य में, मानव चेतना के अन्तः बाह्य जगत के चित्रण की चेष्टा में उपन्यासकार इससे पीछे नहीं रहा। उसने भी मनोविश्लेषण का आश्रय लिया है। डॉ0 सत्येन्द्र ने हिन्दी उपन्यासों के विकास का चिन्तन करते हुए 'राष्ट्रीय चेतना' के पश्चात् 'व्यक्ति के मनोमंथन' तथा फिर 'सामाजिक – राजनीतिक विचार मंथन' का उल्लेख किया है।[1] यह 'व्यक्ति का मनोमंथन' ही मूलतः 'मनोविश्लेषण' का स्वरूप प्रतिपादित करता है। उपन्यासकार जैनेन्द्र 'मनोमंथन' से अधिक कहीं 'मनोन्वयन' शब्द को उपन्यास के लिए उपयुक्त समझते हैं। वे मनोविश्लेषण को चिकित्सा जगत का शब्द ही मानकर चलते हैं।[2] 'मनोविश्लेषण' उपन्यास जगत परिचित शब्द है। मनोविश्लेषण घटक जिस उपन्यास की बात कही जाती है उसके संबंध में डॉ0 देवराज उपाध्याय का कथन है कि – वह साधारण कथाओं के रूप में भिन्न होगा और वह अपने पाठकों से, यदि वह पाठक साधारण पाठक हुआ, जैसे पाठक हुआ करते हैं – एक भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया की आशा करेगा।[3] कारण भी स्पष्ट है कि मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास में सामान्य मानव का चित्रांकन न करके मानव के आभ्यान्तरिक व्यक्ति का चित्रण उपन्यासकार करता है। जिसमें उसकी अवचेतनमयी प्रवृत्तियों के गोपन चित्रण भी अगोपन हो जाते हैं।

जैनेन्द्र का विश्रांति पूर्व का तृतीय लघु आकारीय उपन्यास'त्यागपत्र' है। घर–बाहर की समस्या को लेकर सुनीता से प्राप्त प्रसिद्धि के साथ जैनेन्द्र का शिल्पगत नवीन प्रयोग और नारी मूल्यों की दिशा में यह उपन्यास नवीनता के स्तर पर आत्मकथात्मक है। सर एम0 दयाल (प्रमोद) अपनी मृणाल बुआ की मृत्यु से अवसन्न होकर अपनी चीफ जजी से त्याग पत्र दे देता है। क्योंकि अपनी आंतरिक चिंतना और पारिस्थितिक सहनीयता के चरम पर पहुंचकर वह अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है और अपनी बुआ की मृत्यु का मूल अपनी असमर्थता में मान लेता है।

प्रमोद की बुआ मृणाल अनिद्य सुन्दरी, मातृ–पितृहीन के रूप में भाई–भावज और भतीजे के साथ रहती है। वह अपनी सहेली के भाई से प्रेम करती है। भाभी को इसका पता चलते ही उस पर मार पड़ती है। अंततः इसके भाई एक अधेड़ उम्र के दुहाजू से उसका विवाह कर देते हैं। मृणाल को पतिगृह में सुख नहीं मिलता। पति उसे घर से निकाल देते हैं, तो वह कोयले वाले के साथ रहने लगती है। प्रमोद के घर के आमंत्रण को ठुकरा देती है। कोयले वाले द्वारा छोड़ देने पर मृणाल वैश्याओं की बस्ती में जा पहुंचती है, जहां निम्नवर्गीय जीवन बिताती हुई अपमृत्यु को प्राप्त होती है। मृणाल का चरित्र सामाजिक द्रोह के समानान्तर अतृप्त और आत्मपीड़न से अभिशप्त है। यह व्यक्तिवादी चेतना से युक्त मानसिक अधोगति के स्तर पर आत्मपीड़ा भोग की यथार्थता[4] का प्रतीक है। मृणाल के माध्यम से उसी घर–बाहर की समस्या को पुनः उठाया गया है। पति द्वारा निकाल दिये जाने पर भी वह पतिगृह में पत्नीत्व का अधिकार समझे हुए हैं और इस प्रकार न वह घर तोड़ना चाहती है, न समाज ही। अपितु समाज से अलग उसकी मंगलाकांक्षा में स्वयं टूटती है। डॉ0 देवराज उपाध्याय ने 'त्यागपत्र' को हिन्दी कथा–साहित्य के लिए एक विचित्र मनोवैज्ञानिक दस्तावेज [5] के रूप में माना है, जिसमें मृणाल एक अस्वीकृत अनावश्यक बालिका [6] के रूप में चित्रित है।

जैनेन्द्र का विश्रांतिपूर्व चौथा उपन्यास है। यह भी आत्मकथात्मक शैली में अन्य पन्नोल्लेख की प्रविधि अपनाकर लिखा गया है। वकील साहब कल्याणी की कथा प्रस्तुति करते हैं। श्रीमती कल्याणी असरानी महत्वाकांक्षी डाक्टर हैं, जो अपने छात्र जीवन में विदेश में एक युवक से प्रेम करने लगी थी। वर्तमान में वही भूतपूर्व प्रेमी देश का प्रीमियर है। भारत लौटकर घटनाचक्र में फसकर कल्याणी डॉ0 असरानी से विवाह कर लेती है। असफल दाम्पत्य में वह पत्नीत्व धारणकर पति के नीचतापूर्ण कृत्यों को सहन करती रहती हैं। व्यवसाय बुद्धि का पति उसे पत्नीत्व से प्रेयसीयत्व की ओर ले जाने के लिए प्रीमियर को घर पर दावत देता है। अंत में वह घर–बाहर की समस्या के स्तर पर स्वयं मृणाल की भांति टूटती है। कल्याणी एक प्रकार से मृणाल का ही दूसरा संस्करण है। जो घर बचाने की चेष्टा में लीन है। कल्याणी का पति शंकालु और पत्नी निर्भर है। पत्नी के 'केरिअरिजम' में न चाहते हुए भी बाधक है। कल्याणी एक विद्रोहिणी नारी के रूप में अपना निजत्व मिटाकर भी केरिअरिजम के स्तर अपने पातिव्रत्य का निर्वाह करती है और परिणामस्वरूप वह निराशा, कुण्ठा, वितृष्णा, अपमान और अतृप्ति भोगती है। डॉ0 देवराज उपाध्याय के मतानुसार कल्याणी में मरण प्रवृति पूर्ण विकसित रूप में सक्रिय है।

यह प्रथम और औपन्यासिक क्रम में पांचक उपन्यास है। यह उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में है। सुखदा की नारी 'सुखदा' कल्याणी मृणाल से कहीं अधिक सुनीता के अधिक निकट है। सुखदा किसी माध्यम से नहीं, अपितु स्वयं अपनी कथा कहती है। वह एक अच्छे परिवार की युवती है, जिसने अपने पति एवं परिवार के कुछ सपने संजोये हैं। पर विवाह डेढ़ सौ रूपये मासिक पाने वाले युवक कान्त से हो जाता है। प्रारम्भ में पति प्रेम में वह सब कुछ भूल जाती है। धीरे–धीरे जीवन की वास्तविकताओं का पता चलने पर स्वयं को खोखला अनुभव करती है। तभी उसके घर में नौकर के रूप में एक क्रान्तिकारी आकर रहता है। बाद में नौकरी छोड़ जाने पर वह पुलिस द्वारा पकड़ा जाता है। पत्नी इस पर रूष्ट होती है वह समझती है कि पति ने पकड़ा दिया है। इसी अवधि में आर्थिक वैशम्य उनके सम्बन्धों को और भी कटु बना देता है। सुखदा पति के निरोधात्मक और अंकुश रहित व्यवहार से उच्छखल बनती चली जाती है। घर और बाहर की समस्या उभरती

हैं जो सुखदा के प्रेम और विवाह पर ही आधारित है। सुखदा पति के व्यक्तित्व के साथ समाहित नहीं हो पाती और अन्त में क्रान्तिकारी लाल की ओर आकृष्ट होती है। यह क्रान्तिदल में सम्मिलित हो जाती है। क्रान्तिदल के संचालक हरिदा पुनः घर के निर्माणार्थ उसे घर वापस भेजते हैं। सुखदा मूलतः नैराश्यपूर्ण मनोव्यथा ग्रसित नायिका है। वह पति–प्रेम की अतृप्तावस्था में पर–पुरूष प्रेम की अभिलाषिणी बनकर घर छोड़कर बाहर जाती है। क्रान्ति में विश्वास करके सार्वजनिक जीवन में प्रविष्टि होकर भी वह अतृप्त अनुभव करती हैं। इस प्रकार घर तो क्षय होता ही है, बाहर भी बिना टुटे नहीं रहता। सामाजिक जीवन एवं पारिवारिक जीवन में सामंजस्य खोजने की प्रक्रिया में वह नैराष्य भावना का प्रसार[7] करती हुई आत्म पीड़ा भोगती है। सुखदा के अहं के उत्सर्ग का स्वरूप निर्धारित करते हुए डा0 नगेंद्र का कथन है कि – जीवन की सबसे बड़ी समस्या है अहं और सबसे सफल समाधान है उसका उत्सर्ग । सुखदा के जीवन की भी मूल समस्या यही अहंकार है, जिसके उत्सर्ग के लिए वह अपने को पीड़ा की अग्नि में डाल देती है।

यह द्वितीय और जैनेन्द्र का छठा उपन्यास है। वर्णना त्मक शैली में इस उपन्यास की महता इसलिए भी हैं कि जैनेन्द्र ने पुरूष नायक प्रधान प्रथम उपन्यास हिन्दी को दिया हैं। सारा उपन्यास जितेन नामक युवक को केन्द्र बनाकर प्रस्तुत किया गया है। जितेन सम्पादकीय विभाग में हैं और भुवनमोहिनी रिटायर्ड जज की संतान से आकर्षण सूत्र में आबद्ध है। भुवनमोहिनी और जितेन के प्रेमाकर्षण के मध्य अमीरी–गरीबी का अंतर आता है। अतः वर्गभेद के कारण भुवनमोहिनी का विवाह इंगलैंण्ड से लौटे हुए बैरिस्टर नरेशचन्द्र के साथ हो जाता है। जितेन प्रेम में असफल होकर शहर छोड़ देता है और क्रान्तिकारी बन जाता है। एक रात में वह ट्रेन उलटकर भुवनमोहिनी के घर में शरण पाता है तथा बीमार हो जाता है। चलते समय उसके आभूषण दल की आवश्यकता हेतू धन प्राप्ति के लिए चुरा लेती है। दल के साथियों से भुवन को अपने गुप्त स्थान पर बुलाकर आभूषणों के बदले नकद धन की मांग करता है। भुवन का समर्पण उसे पुलिस के सम्मुख आत्मसमपर्ण की प्रेरणा देता है। जितेन का दमित काम उसे प्रेम की असफलता के कारण क्रांतिकारी बनाता है और उसके कारण ही भुवन में उच्च अहं प्रतिष्ठित होता है। विवाह की विफलता ही भुवन के निजी संघर्ष का कारण बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुखदा के समानान्तर ही कथा यहां है। क्रांति–कथा, आर्थिक वैषम्य, प्रेम–व्यवहारादि समान ही हैं। सुखदा की अहंवादी चेतना की सामाजिक या वैवाहिक विस्थितियों की परिणति इस कृति की भुवन में उपलब्ध होती हैं। जिस आत्म पीड़क उच्च अहंता का भोग सुखदा के पति कान्त की अनिरोधात्मक वृति से मिलता है, वही यहां नरेश की उदारतावृति के कारण भुवनमोहिनी में उदात और विगलित हो जाता है। इस कृति में जैनेन्द्र ने स्वयं क्रांति का उल्लेख 'समाज की नींव तोड़ने का एक असत्र' कहा हैं।

यह तृतीय और जैनेन्द्र का सातवां उपन्यास है। जो पुनः आत्मकथात्मक शैली में नायक जयन्त द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अनीता जयन्त की प्रेमिका है और उसका विहाह मि0 पुरी से हो जाता है। अनीता मि0 पुरी की विवाहिता होकर भी जयन्त की चिंता में लीन रहती है। जयन्त पचहतर रूप्ये मासिक पर एक समाचार पत्र में सह सम्पादक के रूप में कार्य करता है। अनीता उसे वहां से ले जाने और मनाने आती है। पर वह नौकरी छोड़कर नही जाता। पिता की मृत्यु के अवसर पर अनीता चाहती है कि जयन्त विवाह करके गृहस्थ बने। तभी उसके जीवन में कुमार के माध्यम से उसकी चचेरी बहिन चन्द्री आती है जिससे वह विवाह तो करता है पर सामंजस्य नहीं कर पाता और पत्नी विमुख होकर वह सेना में कमीशन पाकर युद्ध में चला जाता है। घायल होकर अस्पताल में पड़े होने पर चंद्री सेवा करती है, वहीं अनीता आती है और वह चंद्री को अपनाने के लिए तैयार करने के लिए तैयार करने के लिए स्वस्थ जयन्त को होटल में देह समपर्ण करती है तभी जयन्त विरक्त हो जाता है। जयन्त की यौनाकांक्षा की परिपूर्णता में सहायक होकर अनीता प्रिय के प्रेमदाह को अपनी देहताप द्वारा खण्डित होने से[8] बचाती हुई पत्नीत्व और प्रेयसीयत्व में जाती है। इस कृति में भी उपन्यासकार ने बुद्धि और ह्रदय या भावना जगत और व्यवहार जगत के संघर्ष के आलोक में जीवन की व्यर्थता का चित्रण किया है।

यह चतुर्थ एवं जैनेन्द्र का आठवां उपन्यास है जो उपन्यासकार की निरन्तर विकसित दार्शनिक चिन्तना और गांधीवादी चेतना की परिणति है। यह उपन्यास अत्यंत चर्चित रहा है। डायरी शली के माध्यम से इसे अपनी विशिष्ट प्रविधि में एक अमेरिकन पत्रकार विल्बट शोल्डन हूस्टन द्वारा जयवर्धन के जीवन की झांकी के रूप में प्रस्तुत किया गया है यह अब तक प्रकाशित जैनेन्द्र के उपन्यासों में सर्वाधिक बहुलाकारीय उपन्यास है। जिसका परिप्रेक्ष्य घर–बाहर के समाधान और क्रान्ति के स्तर पर पलयानवादी वृति के समान्तर राजनीतिक एवं समसामयिक बोध से अनुप्रेरित है[9]। जयवर्धन राष्ट्राधिप है जो विवाह संस्थान में विश्वास नहीं करता है। इला के संसर्ग–सम्पर्क में निरंतर रहते हुए अपने विरोधियों के प्रति प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही से विमुख रहता है। राजनीतिक एवं समाजिक क्षेत्र में विरोधजन्य परिस्थिति का आकलन होने पर भी वह स्वहीन रह कर राज्य सता को निर्मूल्य करता है। इला के पिता आचार्य भी जय के विरूद्ध हैं पर पुत्री के कारण विरोध प्रकट नहीं करते। भारतीय संस्कृति के पुजारी चिदानंद भी विरोधी हैं जिनका विरोद्ध मूलतः इला के ही कारण है। तीसरा प्रतिगामी दल नाथ दम्पति का है जो प्रारम्भ में विरोधी है। जो श्रीमती (एलिजाबेथ) की महत्वाकांक्षा और जय के प्रति यौनाकर्षण के स्तरपर जय का सहयोगी बना जाता है। वह श्री नाथ को छोड़कर जय का संसर्गपान की आंकाक्षी है। जय राष्ट्रधिप के पद को अनावश्यक मानते हुए पद त्यागकर सर्वदलीय सरकार बनाने के लिए राष्ट्र के सभी दलों का आह्वान करता है। इसी अवसर पर आचार्य जय को इला के साथ विवाह की स्वीकृति प्रदान करते हैं। स्वामी चिदान्द पदत्याग को महत्व नहीं देते। जय सर्वदलीय नेतृत्व करने का आग्रह चिदानंद से करके उसी रात स्वयं गायब हो जाता है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास' है जिसमें एक और विवाह का अन्तर्द्वन्द्व जैनेन्द्रीय प्रेम के ढांचे से अनुप्रेरित है तथा जय के निजत्व का निर्माण करता है।[10] जयवर्धन की सर्वाधिक विचारणीय वस्तु है– आज के युग एक चुभनेवाली सच्चाई यानी राजसता थी। असलियत और व्यक्ति के साथ उसके संबंधों की छानबीन,[11] जो इसे व्यक्तिवादी उपन्यास सिद्ध करती है। राजनीतिक स्पर्श इस उपन्यास में है पर वह अनेक स्वार्थी एवं दलों के बीच जयवर्धन की स्थिति को उलझाती है जय स्वलीन और वैयक्तिवादी है दलीय स्वार्थों के संघर्ष के समय की वह निष्क्रिय द्रष्टा बना रहकर अकर्मक राजतन्त्र की स्थिति में दलीय संघर्षों को सम स्थिति में लाने के लिए राष्ट्राधिव के पद को त्याग करता है।

## निष्कर्ष

जैनेन्द्र कुमार जहां व्यक्तिवादी चिन्तक है, उन्होंने अपने औपन्यासिक पात्रों को लेकर उनके अन्तर्जगत का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का ही यत्न किया है। वे 'व्यक्तिगत जीवन का

चित्रण करते हुए बाहर से भीतर की और आये है, सामाजिक निरूपण के स्थान पर व्यक्तिगत उपासक का विश्लेषण करने लगे है।[12] जैनेन्द्र ने वैयक्तिक चेतना के स्तर पर 'नवीन मानदण्डों के स्थापित करने तथा प्राचीन आदर्शों एवं परम्पराओं की निर्मूल करने की[13] दिशा में मनोविश्लेषण का आश्रय लिया है। पर यह नितांत एकांगी नहीं रहा। उसमें बड़े ही कौशल से भारतीय तत्व चिंतन और आध्यात्म की व्यंजना भी चरितार्थ होती है।

**संदर्भ**


1. सत्येन्द्र (डॉ0) : हिन्दी उपन्यास विवेचन, पृ0 238
2. लेखक से चर्चा 8 नवंबर 1974
3. उपाध्याय देवराज (डॉ0) : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ0 8
4. कुल श्रेष्ठ, विजय : जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी समस्या, युगबोधक, अगस्त, 1969, पृ. 7
5. उपाध्याय, देवराज (डा.) : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ 159
6. वही पृ. 145
7. वही पृ0 235 नगेंद्र (डा.) विचार चोर विश्लेषण, पृ0 152
8. विवर्त, पृ. 87
9. कुलश्रेष्ठ, विजय : जैनेन्द्र के उपन्यासों की फ्रायडीय नारी, साहित्य संदेश जून 1968 पृ 454
10. कुलश्रेष्ठ, विजयः जयवर्धन वस्तु और विचार पृष्ठ, 43–45
11. मिश्र रामदरश (डा. (स) : जयवर्धन की पहचान, पृ 21
12. धवन, सुशमा (डॉ0) हिंदी उपन्यास, पृ0 169
13. सिंह, त्रिभुवन (डॉ0) : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ0 123